कहानियां

भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम के अनसुने नायकों की

एक रानी जो झुकी नहीं – बेगम हज़रत महल की कहानी

स्थान: *लखनऊ, उत्तर प्रदेश*

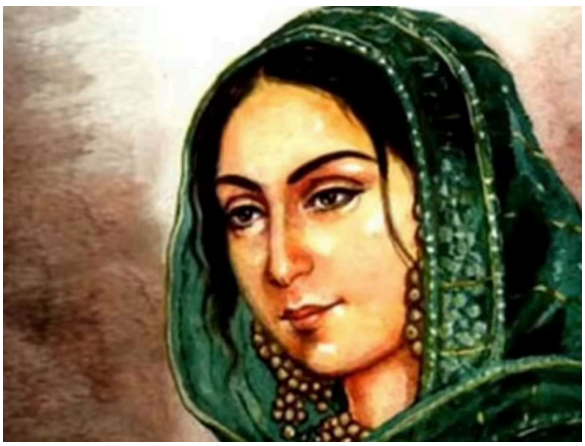

थोड़ी देर आंखें बंद कीजिए और सोचिए — साल 1857 है, चारों ओर हलचल मची हुई है। भारत के लोग गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए खड़े हो गए हैं। झांसी में लक्ष्मीबाई तलवार लेकर रणभूमि में हैं, और दूसरी ओर — लखनऊ में एक और रानी डटकर खड़ी हैं — उनका नाम है बेगम हजरत महल।

अंग्रेज़ों ने उनके पति, नवाब वाजिद अली शाह, को सत्ता से हटाकर कलकत्ता भेज दिया। **ऐसे समय में बेगम हजरत महल ने लड़ने का निर्णय लिया।**

उन्होंने अपने छोटे बेटे को, जो उस समय केवल 11 वर्ष का था, लखनऊ का राजा घोषित किया और **खुद युद्ध की सेनापति बन गईं।** उन्होंने लखनऊ के आम लोगों को एकजुट किया, सैनिकों को प्रशिक्षण दिया और अंग्रेज़ों से भिड़ गईं। उनके नेतृत्व की ताकत इतनी अद्भुत थी कि **कुछ समय के लिए अंग्रेज़ों को लखनऊ छोड़कर भागना पड़ा।**

लेकिन, अंग्रेज़ बड़ी सेना और कूटनीति के साथ लौटे। उन्होंने लखनऊ पर फिर से हमला किया। क्या बेगम डर गईं? नहीं! **घोड़े पर सवार होकर, हाथ में तलवार लेकर, गांव-गांव घूमकर उन्होंने लोगों का हौसला बढ़ाया।** उन्होंने हिंदू-मुस्लिम सभी को एकजुट कर लड़ाई लड़ी।

जब अंग्रेज़ों के आखिरी हमले में सब कुछ नष्ट हो गया, तो वे नेपाल चली गईं। वहां उन्होंने शरण ली — लेकिन कभी अंग्रेज़ों से माफी नहीं मांगी, फिर से रानी बनने की याचना नहीं की, और अपने देश के साथ गद्दारी नहीं की।

सीख: सच्चा नेतृत्व वही है जो संकट में भी अडिग रहे। कोई भी स्त्री सेना का नेतृत्व कर सकती है और अंग्रेज़ों से लड़ सकती है। देशभक्ति का मतलब है — हालात कितने भी कठिन हों, देश के लिए लड़ते हुए कभी हार न मानना।

आज हम खुली हवा में सांस ले रहे हैं, तो यह याद रखना जरूरी है कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम में सिर्फ पुरुषों की ही नहीं, बल्कि वीर महिलाओं की भी बराबर की हिस्सेदारी रही है।

कहानियां

भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम के अनसुने नायकों की

किताबों वाला क्रांतिकारी: पीर अली खान की कहानी

स्थान: *पाटना, बिहार*

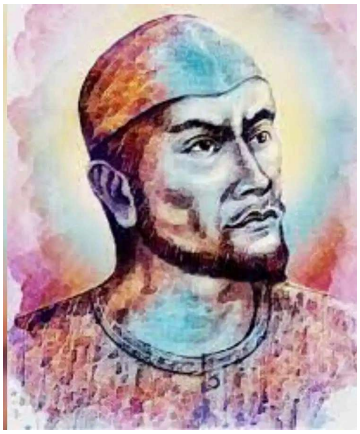

बहुत साल पहले की बात है। यह कहानी है एक बहादुर किताबवाले की — पीर अली खान की। वे किताबें बेचते थे, लेकिन उनके दिल में आज़ादी की मशाल जल रही थी।

सन् 1812 में, पीर अली खान का जन्म पटना में हुआ। वे व्यापारी थे और एक छोटी-सी किताबों की दुकान चलाते थे। बाहर से वे साधारण आदमी लगते थे, लेकिन भीतर से वे एक ज्वालामुखी थे — अंग्रेज़ों के अन्याय के खिलाफ फटने को तैयार।

1857 में जब देशभर में बग़ावत की लहर उठी — जिसे हम आज 'पहला स्वतंत्रता संग्राम' कहते हैं — तब पीर अली खान ने अंग्रेज़ों के खिलाफ लोगों को संगठित करना शुरू किया। वे गुप्त संदेश पहुंचाते, लोगों को जागरूक करते और क्रांति की योजना बनाते थे। वे फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदुल्ला शाह के घनिष्ठ सहयोगी थे और बिहार से लेकर उत्तर भारत तक क्रांतिकारियों का मज़बूत जाल बिछा चुके थे।

लेकिन अंग्रेज़ों को शक हो गया। पटना में उनकी दुकान पर छापा डाला गया। वहां से क्रांतिकारी पत्रक, पत्र और योजनाएं बरामद हुई। पीर अली को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया।

जब उन्हें अदालत में पेश किया गया, तो उन्होंने बिना डरे कहा: **"मैंने भारत की आज़ादी के लिए काम किया है। यह मेरा कर्तव्य था — कोई अपराध नहीं।"**

18 जुलाई 1857 को, पटना में सबके सामने उन्हें फांसी दे दी गई। लेकिन उनकी मौत ने लोगों को डराने के बजाय, पटना में और भी बग़ावत भड़का दी। आज शायद इतिहास की किताबों में उनका नाम छोटे अक्षरों में लिखा हो — लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में पीर अली खान हमेशा के लिए अमर हैं।

सीख: उनका साहस हमें यह सिखाता है कि अगर सीने में हिम्मत और दिल में देश के प्रति प्रेम हो, तो एक साधारण किताबवाला भी इतिहास बदल सकता है।

कहानियां

भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम के अनसुने नायकों की

कैप्टन भाऊ और तूफान सेना की कहानी

स्थान: *सातारा, महाराष्ट्र*

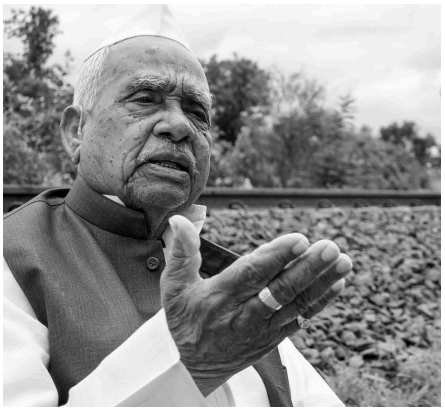

बहुत साल पहले की बात है, जब भारत अंग्रेज़ों की गुलामी में था। अंग्रेज़ हमारे देश की संपत्ति लूट रहे थे और जो भी विरोध करता, उसे जेल में डाल देते।

लेकिन एक जगह थी — सातारा — जहां कुछ बहादुर लोग चुप नहीं बैठे। वहां एक गुप्त सरकार बनी थी, जिसका नाम था — **प्रति सरकार**। यह सरकार छिपकर काम करती, गरीबों की मदद करती और अंग्रेज़ों को चकमा देती थी।

इसी सरकार में एक साहसी युवक थे — रामचंद्र श्रीपती लाड। सब उन्हें प्यार से **कप्तान भाऊ** कहते थे।

कप्तान भाऊ कोई साधारण नेता नहीं थे। उन्होंने बच्चों और किशोरों की एक टोली बनाई, जिसका नाम रखा — **तूफ़ान सेना**! इस सेना में 10 से 16 साल के बच्चे थे, जो बिना डरे अंग्रेज़ों के खिलाफ काम करते — चिट्ठियां पहुंचाते, गुप्त सूचना देकर लोगों को सतर्क करते और जरूरत पड़ने पर हथियार भी लाते। तूफ़ान सेना में सिर्फ बच्चे ही नहीं, बल्कि किशोर, युवक और कुछ बुजुर्ग भी शामिल थे।

7 जून 1943 की रात की बात है। भाऊ और उनके साथियों ने शेणोली रेलवे स्टेशन पर एक ट्रेन रोकी। उस ट्रेन में अंग्रेज़ों का ख़ज़ाना और महत्वपूर्ण सामान था। भाऊ और उनके साथियों ने टिकट खिड़की खोली, पैसे निकाले और प्रति सरकार को दे दिए। इन पैसों से गांवों में स्कूल चलाए गए, अनाज बांटा गया और क्रांतिकारियों की मदद की गई।

जब किसी ने पूछा, **"क्या आपने चोरी की?"** तो भाऊ हंसकर बोले: **"हमने चोरी नहीं की। अंग्रेज़ों ने हमें सालों-साल लूटा है। हमने तो अपने लोगों के लिए बस थोड़ा-सा वापस लिया है, इसे चोरी क्यों कहें?"**

कप्तान भाऊ का दिल बहुत बड़ा था। उन्होंने कभी डर को पास नहीं आने दिया। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी उन्होंने समाजसेवा जारी रखी। वे 100 साल जिए और 2022 में दुनिया को अलविदा कह दिया।

सीख: देश के लिए कुछ करने के लिए उम्र की कोई सीमा नहीं होती। सत्य और साहस से बड़ा कोई हथियार नहीं। कठिन समय में छोटे-छोटे बच्चे भी हीरो बन सकते हैं! कप्तान भाऊ जैसे लोगों की वजह से ही आज हम खुली हवा में सांस ले पा रहे हैं। उनकी तूफ़ान सेना भले ही बच्चों की थी, लेकिन उनका काम बड़ों से भी महान था।

कहानियां

भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम के अनसुने नायकों की

गणेश शंकर विद्यार्थी

स्थान: *इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश*

यह कहानी है एक ऐसे नायक की, जिसने न तो तलवार से लड़ाई लड़ी, न बंदूक से... लेकिन फिर भी जिसके साहस की मिसाल दी जाती है। नाम था — गणेश शंकर विद्यार्थी। ऐसे सैनिक, जिन्होंने **कलम को हथियार बनाया और सत्य व मानवता के लिए संघर्ष किया।**

गणेश शंकर विद्यार्थी का जन्म 1890 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद ज़िले में हुआ। पढ़ाई में होशियार, विचारों में स्पष्ट, और दिल में देश के लिए जलती लौ। बहुत कम उम्र में वे पत्रकारिता की ओर मुड़े और जल्द ही **'प्रताप'** नाम का अख़बार शुरू किया।

इस अख़बार के माध्यम से उन्होंने अंग्रेज़ों के जुल्म, किसानों की दुर्दशा और सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाई। अंग्रेज़ यह सहन नहीं कर पाए और उन्हें कई बार जेल में डाला गया। लेकिन विद्यार्थी जी ने कभी हार नहीं मानी।

वे सिर्फ़ पत्रकार ही नहीं, बल्कि सच्चे समाजसेवक भी थे।

स्वतंत्रता संग्राम को कमजोर करने के लिए अंग्रेज़ों ने "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाई। इसके तहत उन्होंने जानबूझकर हिंदू और मुस्लिम समुदायों में झगड़े भड़काए। 1931 में कानपुर में भयानक दंगे हुए। लेकिन गणेश शंकर विद्यार्थी हिंसा रोकने के लिए खुद सड़कों पर उतर आए। **हिंदू होते हुए भी उन्होंने कई मुस्लिमों की जान बचाई।**

इसी प्रयास में, **भीड़ ने उनकी हत्या कर दी।** वे शहीद हो गए।

लेकिन उनके बलिदान ने साबित कर दिया कि सच्चा देशभक्त वही है, जो सबको जोड़ने का काम करता है — भले ही इसके लिए अपनी जान क्यों न गंवानी पड़े।

सीख: गणेश शंकर विद्यार्थी की कहानी हमें सिखाती है कि समाज परिवर्तन के लिए सिर्फ़ नारेबाज़ी नहीं, बल्कि बलिदान भी ज़रूरी है। गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे लोग हमारे दिलों में, अंधेरे में भी रोशनी देने वाले दीपक की तरह, हमेशा जीवित रहेंगे।